अध्याय-९

विदा होते समय बाबा की आज्ञा का पालन और अवज्ञा करने के परिणामों के कुछ उदाहरण, भिक्षावृत्ति और उसकी आवश्यकता, भक्तों (तर्खड कुटुम्ब) के अनुभव।

गत अध्याय के अन्त में केवल इतना ही संकेत किया गया था कि लौटते समय जिन्होंने बाबा के आदेशों का पालन किया, वे सकुशल घर लौटे और जिन्होंने अवज्ञा की, उन्हें दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा। इस अध्याय में यह कथन अन्य कई पुष्टिकारक घटनाओं और अन्य विषयों के साथ विस्तारपूर्वक समझाया जाएगा।

शिरडी यात्रा की विशेषता

शिरडी यात्रा की एक विशेषता यह थी कि बाबा की आज्ञा के बिना कोई भी शिरडी से प्रस्थान नहीं कर सकता था और यदि किसी ने किया भी, तो मानो उसने अनेक कष्टों को निमंत्रण दे दिया। परन्तु यदि किसी को शिरडी छोड़ने की आज्ञा हुई तो फिर वहाँ उसका ठहरना नहीं हो सकता था। जब भक्तगण लौटने के समय बाबा को प्रणाम करने जाते तो बाबा उन्हें कुछ आदेश दिया करते थे, जिनका पालन अति आवश्यक था। यदि इन आदेशों की अवज्ञा कर कोई लौट गया तो निश्चय ही उसे किसी न किसी दुर्घटना का सामना करना पड़ता था। ऐसे कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

तात्या कोते पाटील

एक समय तात्या कोते पाटील ताँगे में बैठकर कोपरगाँव के बाजार को जा रहे थे। वे शीघ्रता से मस्जिद में आए। बाबा को नमन किया और कहा कि मैं कोपरगाँव के बाजार को जा रहा हूँ। बाबा ने कहा, ''शीघ्रता न करो, थोड़ा ठहरो। बाजार जाने का विचार छोड़ दो और गाँव के बाहर न जाओ।'' उनकी उतावली को देखकर बाबा ने कहा,

''अच्छा, कम से कम शामा को तो साथ लेते जाओ।'' बाबा की आज्ञा की अवहेलना करके उन्होंने तुरन्त ताँगा आगे बढ़ाया। ताँगे के दो घोड़ों में से एक घोड़ा, जिसका मूल्य लगभग तीन सौ रुपये था, अति चंचल और द्रुतगामी था। रास्ते में सावली विहीर ग्राम पार करने के पश्चात् ही वह अधिक वेग से दौड़ने लगा। अकस्मात् ही उसकी कमर में मोच आ गई। वह वहीं गिर पड़ा। यद्यपि तात्या को अधिक चोट तो न आई, परन्तु उन्हें अपनी साई माँ के आदेशों की स्मृति अवश्य हो आई। एक अन्य अवसर पर कोल्हार ग्राम को जाते हुए भी उन्होंने बाबा के आदेशों की अवज्ञा की थी और ऊपर वर्णित घटना के समान ही दुर्घटना का उन्हें सामना करना पड़ा था।

एक यूरोपियन महाशय

एक समय बम्बई के एक यूरोपियन महाशय, नानासाहेब चाँदोरकर से परिचय-पत्र प्राप्त कर किसी विशेष कार्य से शिरडी आए। उन्हें एक आलीशान तम्बू में ठहराया गया। वे तो बाबा के समक्ष नत होकर करकमलों का चुम्बन करना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने तीन बार मस्जिद की सीढ़ियों पर चढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु बाबा ने उन्हें अपने समीप आने से रोक दिया। उन्हें आँगन में ही ठहरने और वहीं से दर्शन करने की आज्ञा मिली। इस विचित्र स्वागत से अप्रसन्न होकर उन्होंने शीघ्र ही शिरडी से प्रस्थान करने का विचार किया और विदा लेने के हेतु वे वहाँ आए। बाबा ने उन्हें दूसरे दिन जाने और शीघ्रता न करने की राय दी। अन्य भक्तों ने भी उनसे बाबा के आदेश का पालन करने की प्रार्थना की। परन्तु वे सब की उपेक्षा कर ताँगे में बैठकर रवाना हो गए। कुछ दूर तक तो घोड़े ठीक-ठीक चलते रहे। परन्तु सावली विहीर नामक गाँव पार करने पर एक बाईसिकिल सामने से आई, जिसे देखकर घोड़े भयभीत हो गए और द्रुत गति से दौड़ने लगे। फलस्वरूप ताँगा उलट गया और महाशय जी नीचे लुढ़क गए और कुछ दूर तक ताँगे के साथ-साथ घिसटते चले गए। लोगों ने तुरन्त ही दौड़कर उन्हें बचा लिया, परन्तु चोट अधिक आने के कारण उन्हें कोपरगाँव के अस्पताल में शरण लेनी पड़ी। इस घटना से भक्तों ने

शिक्षा ग्रहण की कि जो बाबा के आदेशों की अवहेलना करते हैं, उन्हें किसी न किसी प्रकार की दुर्घटना का शिकार होना ही पड़ता है और जो आज्ञा का पालन करते हैं, वे सकुशल और सुखपूर्वक घर पहुँच जाते हैं।

भिक्षावृत्ति की आवश्यकता

अब हम भिक्षावृत्ति के प्रश्न पर विचार करेंगे। संभव है, कुछ लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न हो कि जब बाबा इतने श्रेष्ठ पुरुष थे तो फिर उन्होंने आजीवन भिक्षावृत्ति पर ही क्यों निर्वाह किया?

इस प्रश्न को दो दृष्टिकोण समक्ष रख कर हल किया जा सकता है।

पहला दृष्टिकोण - भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करने का कौन अधिकारी है?

शास्त्रानुसार वे व्यक्ति, जिन्होंने तीन मुख्य आसक्तियों - (१) कामिनी, (२) कांचन और (३) कीर्त्ति का त्याग कर, आसक्ति-मुक्त हो संन्यास ग्रहण कर लिया हो - वे ही भिक्षावृत्ति के उपयुक्त अधिकारी हैं, क्योंकि वे अपने गृह में भोजन तैयार कराने का प्रबन्ध नहीं कर सकते। अत: उन्हें भोजन कराने का भार गृहस्थों पर ही है। श्री साईबाबा न तो गृहस्थ थे और न वानप्रस्थी। वे तो बालब्रह्मचारी थे। उनकी यह दृढ़ भावना थी कि विश्व ही मेरा गृह है। वे तो स्वयं ही भगवान् वासुदेव, विश्वपालनकर्ता तथा परब्रह्म थे। अत: वे भिक्षा-उपार्जन के पूर्ण अधिकारी थे।

दूसरा दृष्टिकोण

पंचसूना - (पाँच पाप और उनका प्रायश्चित) :- सब को यह ज्ञात है कि भोजन सामग्री या रसोई बनाने के लिये गृहस्थाश्रमियों को पाँच प्रकार की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं - (१) कंडणी (पीसना) (२) पेषणी (दलना) (३) उदकुंभी (बर्तन मलना) (४) मार्जनी (माँजना और धोना) (५) चूली (चूल्हा सुलगाना)।

इन क्रियाओं के परिणामस्वरूप अनेक कीटाणुओं और जीवों का

नाश होता है और इस प्रकार गृहस्थाश्रमियों को पाप लगता है। इन पापों के प्रायश्चित स्वरूप शास्त्रों ने पाँच प्रकार के याग (यज्ञ) करने की आज्ञा दी है, अर्थात् (१) ब्रह्मयज्ञ अर्थात् वेदाध्ययन - ब्रह्म को अर्पण करना या वेद का अध्ययन करना (२) पितृयज्ञ - पूर्वजों को दान (३) देवयज्ञ - देवताओं को बलि (४) भूतयज्ञ - प्राणियों को दान (५) मनुष्य (अतिथि) यज्ञ - मनुष्यों (अतिथियों) को दान।

यदि ये कर्म विधिपूर्वक शास्त्रानुसार किये जाएँ तो चित्त शुद्ध होकर ज्ञान और आत्मानुभूति की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। बाबा द्वार-द्वार पर जाकर गृहस्थाश्रमियों को इस पवित्र कर्त्तव्य की स्मृति दिलाते रहते थे और वे लोग अत्यन्त भाग्यशाली थे, जिन्हें घर बैठे ही बाबा से शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिल जाता था।

भक्तों के अनुभव

अब हम अन्य मनोरंजक विषयों का वर्णन करते हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है - **''जो मुझे भक्तिपूर्वक केवल एक पत्र, फूल, फल या जल भी अर्पण करता है तो मैं उस शुद्ध अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा अर्पित की गई वस्तु को सहर्ष स्वीकार कर लेता हूँ।''**[१] यदि भक्त सचमुच में श्री साईबाबा को कुछ भेंट देना चाहता था और बाद में यदि उसे अर्पण करने की विस्मृति भी हो गई तो बाबा उसे या उसके मित्र द्वारा उस भेंट की स्मृति कराते और भेंट देने के लिये कहते तथा भेंट प्राप्त कर उसे आशीष देते थे। नीचे कुछ ऐसी ही घटनाओं का वर्णन किया जाता है।

तर्खड कुटुम्ब (पिता और पुत्र)

श्री रामचन्द्र आत्माराम उपनाम बाबासाहेब तर्खड पहले प्रार्थनासमाजी थे। तथापि वे बाबा के परम भक्त थे। उनकी स्त्री और पुत्र तो बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे। एक बार उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि पुत्र व उसकी माँ ग्रीष्मकालीन छुट्टियाँ शिरडी में ही व्यतीत करें। परन्तु

---

१. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्तयुपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ गीता ९॥ २६॥

पुत्र बाँद्रा छोड़ने को सहमत न हुआ। उसे भय था कि बाबा का पूजन घर में विधिपूर्वक न हो सकेगा, क्योंकि पिताजी प्रार्थना-समाजी हैं और संभव है कि वे श्रीसाईबाबा के पूजनादि का उचित ध्यान न रख सकें। परन्तु पिता के आश्वासन देने पर कि पूजन यथाविधि ही होता रहेगा, माँ और पुत्र ने एक शुक्रवार की रात्रि में शिरडी को प्रस्थान कर दिया।

दूसरे दिन शनिवार को श्रीमान् तर्खड ब्रह्ममुहूर्त्त में उठे और स्नानादि कर, पूजन प्रारंभ करने के पूर्व, बाबा के समक्ष साष्टांग दण्डवत् करके बोले - ''हे बाबा! मैं ठीक वैसा ही आपका पूजन करता रहूँगा, जैसे कि मेरा पुत्र करता रहा है, परन्तु कृपा कर इसे शारीरिक परिश्रम तक ही सीमित न रखना।'' ऐसा कहकर उन्होंने पूजन आरम्भ किया और मिश्री का नैवेद्य अर्पित किया, जो दोपहर के भोजन के समय प्रसाद के रूप में वितरित कर दिया गया।

उस दिन की सन्ध्या तथा अगला दिन इतवार भी निर्विघ्न व्यतीत हो गया। सोमवार को उन्हें ऑफिस जाना था, परन्तु वह दिन भी निर्विघ्न निकल गया। श्री तर्खड ने इस प्रकार अपने जीवन में कभी पूजा न की थी। उनके हृदय में अति सन्तोष हुआ कि पुत्र को दिये गए वचनानुसार पूजा यथाक्रम संतोषपूर्वक चल रही है। अगले दिन मंगलवार को सदैव की भाँति उन्होंने पूजा की और ऑफिस को चले गए। दोपहर को घर लौटने पर जब वे भोजन को बैठे तो थाली में प्रसाद न देखकर उन्होंने अपने रसोइये से इस सम्बन्ध में प्रश्न किया। उसने बतलाया कि आज विस्मृतिवश वे नैवेद्य अर्पण करना भूल गए हैं। यह सुनकर वे तुरन्त अपने आसन से उठे और बाबा को दण्डवत् कर क्षमा-याचना करने लगे तथा बाबा से उचित पथ-प्रदर्शन न करने तथा पूजन को केवल शारीरिक परिश्रम तक ही सीमित रखने के लिये उलाहना देने लगे। उन्होंने संपूर्ण घटना का विवरण अपने पुत्र को पत्र द्वारा सूचित किया और उससे प्रार्थना की कि वह पत्र बाबा के श्री चरणों पर रखकर उनसे कहना कि वे इस अपराध के लिये क्षमाप्रार्थी हैं। यह घटना बाँद्रा में लगभग दोपहर को हुई थी और उसी समय शिरडी में जब दोपहर की आरती प्रारम्भ होने ही वाली थी कि बाबा

ने श्रीमती तर्खड से कहा - ''माँ, मैं कुछ भोजन पाने के विचार से तुम्हारे घर बाँद्रा गया था, द्वार में ताला लगा देखकर भी मैंने किसी प्रकार गृह में प्रवेश किया। परन्तु वहाँ देखा कि भाऊ (श्री तर्खड) मेरे लिये कुछ भी खाने को नहीं रख गए हैं। अतः मैं भूखा ही लौट आया हूँ।'' किसी को भी बाबा के वचनों का अभिप्राय समझ में नहीं आया, परन्तु उनका पुत्र जो समीप ही खड़ा था, सब कुछ समझ गया कि बाँद्रा में पूजन में कुछ तो त्रुटि हो गई है इसलिये वह बाबा से लौटने की अनुमति माँगने लगा। परन्तु बाबा ने आज्ञा न दी और वहीं पूजन करने का आदेश दिया। उनके पुत्र ने शिरडी में जो कुछ हुआ, उसे पत्र में लिख कर पिता को भेजा और भविष्य में पूजन में सावधानी बर्तने के लिये विनती की। दोनों पत्र डाक द्वारा दूसरे दिन दोनों पक्षों को मिले। क्या यह घटना आश्चर्यपूर्ण नहीं है?

श्रीमती तर्खड

एक समय श्रीमती तर्खड ने तीन वस्तुएँ अर्थात् (१) भरित (भुर्ता यानी मसाला मिश्रित भुना हुआ बैंगन और दही) (२) काचर्या (बैंगन के गोल टुकड़े घी में तले हुए) और (३) पेड़ा (मिठाई) बाबा के लिये भेजी। बाबा ने उन्हें किस प्रकार स्वीकार किया, इसे अब देखेंगे।

बाँद्रा के श्री रघुवीर भास्कर पुरंदरे बाबा के परम भक्त थे। एक समय वे शिरडी को जा रहे थे। श्रीमती तर्खड ने श्रीमती पुरंदरे को दो बैंगन दिये और उनसे प्रार्थना की कि शिरडी पहुँचने पर वे एक बैंगन का भुर्ता और दूसरे का काचर्या बनाकर बाबा को भेंट कर दें। शिरडी पहुँचने पर श्रीमती पुरंदरे भुर्ता लेकर मस्जिद गईं। बाबा उसी समय भोजन को बैठे ही थे। बाबा को वह भुर्ता बड़ा स्वादिष्ट प्रतीत हुआ, इस कारण उन्होंने थोड़ा-थोड़ा सभी को वितरित किया। इसके पश्चात् ही बाबा ने काचर्या लाने को कहा। राधाकृष्णमाई के पास सन्देशा भेजा गया कि बाबा काचर्या माँग रहे हैं। वे बड़े असमंजस में पड़ गईं कि अब क्या करना चाहिए? बैंगन की तो

अभी ऋतु ही नहीं है। अब समस्या उत्पन्न हुई कि बैंगन किस प्रकार उपलब्ध हो। जब इस बात का पता लगाया गया कि भुर्ता लाया कौन था? तब ज्ञात हुआ कि बैंगन श्रीमती पुरंदरे लाई थीं तथा उन्हें ही काचर्या बनाने का कार्य सौंपा गया था। अब प्रत्येक को बाबा की इस पूछताछ का अभिप्राय विदित हो गया और सब को बाबा की सर्वज्ञता पर महान् आश्चर्य हुआ।

दिसम्बर, सन् १९१५ में श्री गोविन्द बालाराम मानकर शिरडी जाकर वहाँ अपने पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया करना चाहते थे। प्रस्थान करने से पूर्व वे श्रीमती तर्खड से मिलने आए। श्रीमती तर्खड बाबा के लिये कुछ भेंट शिरडी भेजना चाहती थीं। उन्होंने पूरा घर छान डाला, परन्तु केवल एक पेड़े के अतिरिक्त कुछ न मिला और वह पेड़ा भी अर्पित नैवेद्य का था। बालक गोविन्द ऐसी परिस्थिति देखकर रोने लगा। परन्तु फिर भी अति प्रेम के कारण वही पेड़ा बाबा के लिये भेज दिया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि बाबा उसे अवश्य स्वीकार कर लेंगे। शिरडी पहुँचने पर गोविन्द मानकर बाबा के दर्शनार्थ गए, परन्तु वहाँ पेड़ा ले जाना भूल गए। बाबा यह सब चुपचाप देखते रहे। परन्तु जब वह पुनः सन्ध्या समय बिना पेड़ा लिये हुए वहाँ पहुँचा तो फिर बाबा शान्त न रह सके और उन्होंने पूछा कि ''तुम मेरे लिये क्या लाये हो?'' उत्तर मिला- ''कुछ नहीं।'' बाबा ने पुनः प्रश्न किया और उसने वही उपर्युक्त उत्तर फिर दुहरा दिया। अब बाबा ने स्पष्ट शब्दों में पूछा, ''क्या तुम्हें माँ (श्रीमती तर्खड) ने चलते समय कुछ मिठाई नहीं दी थी?'' अब उसे स्मृति हो आई और वह बहुत ही लज्जित हुआ तथा बाबा से क्षमा-याचना करने लगा। वह दौड़कर शीघ्र ही वापस गया और पेड़ा लाकर बाबा के सम्मुख रख दिया। बाबा ने तुरन्त ही पेड़ा खा लिया। इस प्रकार श्रीमती तर्खड की भेंट बाबा ने स्वीकार की और ''भक्त मुझ पर विश्वास करता है इसलिये मैं स्वीकार कर लेता हूँ।'' - यह भगवद्वचन सिद्ध हुआ।

बाबा का सन्तोषपूर्वक भोजन

एक समय श्रीमती तर्खड शिरडी आई हुई थीं। दोपहर का भोजन

प्राय: तैयार हो चुका था और थालियाँ परोसी ही जा रही थीं कि उसी समय वहाँ एक भूखा कुत्ता आया और भौंकने लगा। श्रीमती तर्खड तुरन्त उठीं और उन्होंने रोटी का एक टुकड़ा कुत्ते को डाल दिया। कुत्ता बड़ी रुचि के साथ उसे खा गया। सन्ध्या के समय जब वे मस्जिद में जाकर बैठीं तो बाबा ने उनसे कहा, ''माँ! आज तुमने मुझे बड़े प्रेम से खिलाया, मेरी भूखी आत्मा को बड़ी सान्त्वना मिली है। सदैव ऐसा ही करती रहो, तुम्हें कभी न कभी इसका उत्तम फल अवश्य प्राप्त होगा। इस मस्जिद में बैठकर मैं कभी असत्य नहीं बोलूँगा सदैव मुझ पर ऐसा ही अनुग्रह करती रहो। पहले भूखों को भोजन कराओ, बाद में तुम भोजन किया करो। इसे अच्छी तरह ध्यान में रखो।'' बाबा के शब्दों का अर्थ उनकी समझ में न आया, इसलिये उन्होंने प्रश्न किया, ''भला! मैं किस प्रकार भोजन करा सकती हूँ? मैं तो स्वयं दूसरों पर निर्भर हूँ और उन्हें दाम देकर भोजन प्राप्त करती हूँ।'' बाबा कहने लगे, ''उस रोटी को ग्रहण कर मेरा हृदय तृप्त हो गया है और अभी तक मुझे डकारें आ रही हैं। **भोजन करने से पूर्व तुमने जो कुत्ता देखा था और जिसे तुमने रोटी का टुकड़ा दिया था, वह यथार्थ में मेरा ही स्वरूप था और इसी प्रकार अन्य प्राणी (बिल्लियाँ, सुअर, मक्खियाँ, गाय आदि) भी मेरे ही स्वरूप हैं। मैं ही उनके आकारों में डोल रहा हूँ। जो इन सब प्राणियों में मेरा दर्शन करता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसलिये द्वैत या भेदभाव भूल कर तुम मेरी सेवा किया करो।**''[१]

इस अमृत तुल्य उपदेश को ग्रहण कर वे द्रवित हो गईं और उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी, गला रुँध गया और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

शिक्षा

''**समस्त प्राणियों में ईश्वर-दर्शन करो**'' - यही इस अध्याय की शिक्षा है। उपनिषद्, गीता और भागवत का यही उपदेश है कि ईशावास्यमिदं सर्वम् - ''सब प्राणियों में ईश्वर का ही वास हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव करो।''

अध्याय के अन्त में बतलाई गई घटना तथा अन्य अनेक घटनाएँ, जिनका लिखना अभी शेष है, स्वयं बाबा ने प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर दिखाया कि किस प्रकार उपनिषदों की शिक्षा को आचरण में लाना चाहिए।

इस प्रकार श्री साईबाबा शास्त्रग्रंथों की शिक्षा दिया करते थे।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥

---

१. यो मां पश्चति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ - गीता अ. ६, श्लोक ३०